THE TIMES OF INDIA

Date:27-08-21

Beyond Courts

Vendetta politics muddies the logic for speedier resolution of cases against MPs, MLAs

TOI Editorials

The Supreme Court's long ongoing effort to fast-track criminal cases against politicians isn't making progress: Criminal cases pending against sitting and former MPs and MLAs registered an 18% jump from 4,122 in December 2018 to 4,859 in September 2020. Solutions like fast-track courts haven't enthused state governments. The 2013 SC judgment, which finally allowed the Representation of People Act to instantly disqualify convicted lawmakers, had given urgency to tackle criminalisation of politics. But eight years later, the process is proving quite unwieldy.

For instance, many alleged cases are "political", registered against netas involved in agitations with offences like rioting, unlawful assembly and obstructing public servants. In these muddied waters, cases like heinous and sexual offences or corruption and economic offences need prioritisation. But agencies like CBI and ED have left cases hanging for years, which is injustice to the accused as well. If these cases are never going to reach trial, they deserve closure. The CJI's bench, hearing an IPS officer from Chhattisgarh, took a grim view of cops framing opponents of their political masters and later facing vendetta when political winds change. The exercise of fast-tracking mustn't descend into a witch-hunt against opposition netas.

A related issue that keeps cropping up is the government of the day's eagerness to withdraw cases against its favourites. With such partisanship, prosecutors and police cannot freely and fairly subject such accused persons through the motions of an investigation and trial. SC has prudently ruled that state governments must take high court approval before withdrawal of cases.

While GoI supported the demand for speedy, timebound investigation and trial of netas, the SC bench quipped: "It's easy for us to say: expedite trial … But where are the judges?" This is a pertinent issue.

Setting up special courts to try netas takes away judges hearing matters of ordinary citizens. GoI and SC must requisition the services of retired HC and district court judges with meritorious records. Their retirement at 62 and 60 prematurely lets go of valuable judicial experience amid the struggles to fill judicial vacancies and dispose of long pending cases. Like netas, ordinary citizens also deserve speedier justice. Spare a thought for those who suffer miscarriage of justice in UP: Its average wait time for a convict appealing a trial court verdict is 35 years. Rather than symbolism of special courts, the justice system must scale up for everyone.

Date:27-08-21

पुलिस का मनमाना इस्तेमाल

संपादकीय

राज्य सरकारें किस मनमाने तरीके से काम करती हैं, इसका उदाहरण है छत्तीसगढ़ पुलिस की ओर से निलंबित आइपीएस अधिकारी जीपी सिंह को राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार करने की कोशिश। इस कोशिश के खिलाफ जीपी सिंह सुप्रीम कोर्ट गए, जहां से उन्हें राहत मिल गई। उन्हें राहत प्रदान करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने जो टिप्पणियां कीं उन पर छत्तीसगढ़ सरकार ही नहीं, अन्य राज्य सरकारों को भी गौर करना चाहिए, क्योंकि पुलिस का मनमाना इस्तेमाल केवल राज्य विशेष की ही समस्या नहीं है। इस मनमानी का परिचय समय-समय पर लगभग सभी राज्य सरकारें देती हैं। वे ऐसा करने में इसीलिए सफल रहती हैं, क्योंकि पुलिस को अपनी कठपुतली की तरह इस्तेमाल करती हैं। विडंबना यह है कि खुद पुलिस भी राज्य सरकारों की कठपुतली बनना पसंद करती है। पुलिस को अपनी प्रतिष्ठा की परवाह करनी चाहिए। वह हर तरह के अधिकारों से लैस है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि राजनेताओं के इशारे पर उसका मनमाना इस्तेमाल किया जाए और अफसर ऐसा होने दें। पता नहीं निलंबित आइपीएस अधिकारी जीपी सिंह के खिलाफ दर्ज आय से अधिक संपत्ति का मामला कितना गंभीर है, लेकिन इतना तो है ही कि इस तरह के मामले राजद्रोह की श्रेणी में नहीं आते। यह समझना कठिन है कि यदि राज्य सरकार किसी कारण से जीपी सिंह के पीछे पड़ गई तो छत्तीसगढ़ पुलिस यह क्यों नहीं देख सकी कि उनके खिलाफ राजद्रोह का मामला बनता है या नहीं?

राजद्रोह संबंधी कानून के दुरुपयोग का यह कोई पहला उदाहरण नहीं। इस तरह के मामले रह-रहकर सामने आते ही रहते हैं। राज्य सरकारें छोटी-छोटी बातों को लेकर लोगों पर राजद्रोह का आरोप मढ़ देती हैं। हालांकि, ऐसे ज्यादातर मामले अदालतों में टिकते नहीं, फिर भी राज्य सरकारें राजद्रोह कानून का मनचाहा इस्तेमाल करने से बाज नहीं आ रही हैं। यह समस्या इसीलिए देखने को मिल रही है, क्योंकि पुलिस और सत्ता का गठजोड़ लगातार मजबूत होता चला जा रहा है। यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने इस गठजोड़ को परेशान करने वाला बताया और इसे रोकने की जरूरत भी जताई, लेकिन उचित यह होगा कि वह यह स्मरण करे कि पुलिस सुधार संबंधी उसके दिशा-निर्देशों पर अभी भी अमल नहीं हो सका है।पुलिस सुधारों की अनदेखी के सिलसिले के लिए राज्यों के साथ-साथ कहीं न कहीं केंद्रीय सत्ता भी जिम्मेदार है।

उसने अपने स्तर पर ऐसी कोई ठोस पहल नहीं की जिससे राज्य पुलिस सुधारों की दिशा में आगे बढ़ें। राज्य सरकारों और केंद्र को यह समझने में देर नहीं करनी चाहिए कि यदि पुलिस सुधारों की दिशा में आगे नहीं बढ़ा गया तो समस्याएं गंभीर ही होंगी। राज्य सरकारों के रवैये को देखते हुए बेहतर यह होगा कि पुलिस खुद में सुधार लाने के लिए प्रयत्न करे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:27-08-21

देश की श्रम शक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी की दशा

महेश व्यास

अशोक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अश्विनी देशपांडे और जितेंद्र सिंह का शोध बताता है कि देश में महिलाओं की कम और गिरती हुई श्रम भागीदारी दर इसलिए नहीं है कि वे शिक्षा पर अधिक खर्च कर रही हैं या उनकी पारिवारिक स्थिति इतनी अच्छी है कि उन्हें काम नहीं करना पड़ रहा है। उन्होंने पाया कि महिलाएं काम करना चाहती हैं और वे काम छोडऩे के बाद भी बार-बार काम की तलाश में श्रम बाजारों में आती हैं। जो महिलाएं किसी न किसी समय श्रम बाजार का हिस्सा रही हैं उन्होंने 2016 से 2019 तक यानी चार वर्ष चले इस अध्ययन के बाद कम से कम दो बार इस बाजार में आवाजाही की है। बेहद कम समय में श्रम बाजार में इस प्रकार आवागमन यही संकेत देता है कि महिलाएं न तो हिचकिचा रही हैं और न ही श्रम बाजार से निकलने के बाद उन्होंने कहीं कोई बेहतर काम शुरू किया है। महिलाओं के लिए श्रम बाजार की स्थितियां बहुत कठिन हैं। लेकिन यह बात उन्हें एक बार बाहर निकलने के बाद भी रोजगार की तलाश में बार-बार श्रम बाजार में वापसी से नहीं रोक पाती। अपने पर्चे, 'ड्रॉपिंग आउट, बीइंग पुश्ड आउट ऑर कान्ट गेट इन? डिकोडिंग डिक्लाइनिंग लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन ऑफ इंडियन वीमन' में लेखकों ने सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकनॉमी (सीएमआईई) के कंज्यूमर पिरामिड हाउसहोल्ड सर्वे (सीपीएचएस) के उच्च तीव्रता वाली प्रकृति के आंकड़ों की मदद ली है ताकि देश की श्रम शक्ति में महिलाओं की कमतर भागीदारी की जटिल समस्या को समझाया जा सके। उन्होंने सर्वथा नए निष्कर्ष पेश किए हैं। लेखक कहते हैं, 'उच्च तीव्रता वाले घरेलू पैनल सर्वेक्षण के 12 दौर का इस्तेमाल करके हमने दिखाया कि भारतीय महिलाओं की श्रम बाजार भागीदारी काफी अस्थिर है क्योंकि वे अत्यंत कम समय में कई बार श्रम बाजार में शामिल होती हैं या बाहर जाती हैं। इसकी वजह शादी, बच्चे के जन्म या पारिवारिक आय में आए बदलाव से इतर होती हैं।'

लेखकों का कहना है कि देश में लंबे समय से यह सोच व्याप्त है कि महिलाएं स्वेच्छा से श्रम बाजार से बाहर जाती हैं क्योंकि उनके परिवार की आय में बढ़ोतरी होती है। कई बार ऐसा रूढ़िवादी सामाजिक मानकों की वजह से भी होता है। लेखकों ने आपूर्ति क्षेत्र की बाधाओं पर ध्यान केंद्रित किया है जो महिलाओं को श्रम बाजार में शामिल होने से रोकती है। इसमें हिंसा, लांछन और रूढ़िवादी मानक प्रमुख हैं। बहरहाल, यदि महिलाएं बहुत कम अंतराल पर बार-बार श्रम बाजार में आएंगी और बाहर जाएंगी तो ये स्पष्टीकरण उचित नहीं लगेंगे क्योंकि लांछन और सामाजिक मानक बहुत अल्प अवधि

में आगे-पीछे नहीं होते। सामाजिक और सांस्कृतिक मानकों की प्रकृति ढांचागत होती है और वे व्यवहार में शामिल होते हैं। उनमें तेजी से बदलाव नहीं आता इसलिए वे श्रम बाजार में महिलाओं के शामिल होने या बाहर जाने के प्रभावी कारक नहीं हो सकते। लेखक यह दर्शाते हैं कि श्रम शक्ति में महिलाओं की अनियमित और अल्पावधि की संलिप्तता के कारण आकलन की समस्या आती है। खासतौर पर उन्होंने पाया कि श्रम शक्ति भागीदारी दर के आकलन का पारंपरिक तरीका महिलाओं की श्रम बाजार में हिस्सेदारी की इच्छा को कम करके आंकता है।

उन्होंने पाया कि जिन 12 दौर का अध्ययन किया गया उनमें कम से कम 45 प्रतिशत महिलाएं किसी एक दौर में श्रम शक्ति का हिस्सा थीं। इससे पता चलता है कि 45 फीसदी महिलाएं अध्ययन के दौरान श्रम बाजार में हिस्सेदारी करने की इच्छा रखती थीं और इन महिलाओं ने इस अवधि में कभी न कभी श्रम शक्ति में भागीदारी भी की। चूंकि श्रम बाजार में उनकी संबद्धता अनियमित है या उसकी प्रकृति अल्पकालिक है इसलिए उन्हें श्रम शक्ति भागीदारी दर के आकलन में पूरी तरह शामिल नहीं किया जाता। सीपीएचएस के इस्तेमाल के आधार पर निकली श्रम शक्ति भागीदारी दर अध्ययन अवधि में करीब 14.5 फीसदी रही। शायद यह आकलन की समस्या न हो लेकिन यह देश में श्रम शक्ति भागीदारी में महिलाओं की कम हिस्सेदारी को समझने के क्षेत्र में अहम अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। 14.5 फीसदी और 45 फीसदी के बीच के अंतर की व्याख्या हम देशपांडे और सिंह के काम से भी कर सकते हैं। इससे यही संकेत निकलता है कि भारत अपनी वृद्धि को गति देने और अपने नागरिकों की स्थिति में सुधार करने के लिए जिस संभावित श्रम शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है वह यही है। यही इकलौता रास्ता है जिसकी मदद से अनुकूल जनांकीय लाभांश का फायदा उठाया जा सकता है।

इस 30.5 फीसदी अतिरिक्त महिला श्रम शक्ति ने काम करने की इच्छा दिखाई है। श्रम बाजार से बाहर होने के बाद बार-बार उनका इसके भीतर आना तथा 45 फीसदी महिलाओं की काम करने की इच्छा यह दर्शाती है कि समस्या आपूर्ति नहीं बल्कि मांग के क्षेत्र में है। लेखकों ने पाया कि अध्ययन अवधि के दौरान उद्योग जगत के रोजगार के घटक में बदलाव यह स्पष्ट नहीं करता है कि महिलाओं के रोजगार में कमी इसलिए आई क्योंकि सभी औद्योगिक समूहों में रोजगारशुदा महिलाएं कम हुई हैं। महिलाओं को पर्याप्त स्थिर रोजगार न मिलने के कारण अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी सीमित है। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था इतने रोजगार नहीं तैयार कर पा रही है कि काम करने की इच्छुक सभी महिलाओं और पुरुषों को रोजगार दिया जा सके।

बीते कुछ वर्षों में कुल रोजगारों की तादाद भी कम हुई है लेकिन उपलब्ध रोजगार मोटे तौर पर महिलाओं के नहीं बल्कि पुरुषों के खाते में जाते हैं। देशपांडे और सिंह ने हमें दिखाया कि ऐसा नहीं है कि महिलाएं काम नहीं करना चाहतीं। तब शायद यह स्पष्ट भेदभाव का मामला भी है। महिलाओं की श्रमशक्तिभागीदारी दर पुरुषों से बहुत कम है। वे पुरुषों से कम शिक्षित नहीं हैं, इसके बावजूद उनकी बेरोजगारी दर उनसे अधिक है। यह भेदभाव का उदाहरण है।शायद सांस्कृतिक समस्या या सामाजिक कलंक की समस्या आम परिवारों के नहीं बल्कि कामकाजी उपक्रमों की सोच में मौजूद है। आम परिवार महिलाओं को काम पर भेजना चाहते हैं लेकिन उद्यम उन्हें स्थिर रोजगार मुहैया कराने के इच्छुक नहीं हैं।

जनसत्ता

Date:27-08-21

प्लास्टिक पर जागरूकता की जरूरत

देवेंद्रराज सुथार

केंद्र सरकार अगले साल तक भारत को एकल उपयोग प्लास्टिक से मुक्त करना चाहती है। इस संदर्भ में पर्यावरण मंत्रालय ने प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियम जारी किए हैं। उसमें कहा गया है कि 1 जुलाई, 2022 से पॉलीस्टाइरिन (थर्मोकोल) और एक्सपैंडेड पॉलीस्टाइरिन के साथ एकल उपयोग वाले प्लास्टिक का उत्पादन, आयात, भंडारण, वितरण, बिक्री और उपयोग वर्जित होगा। अब प्लास्टिक बैग की मोटाई पचास माइक्रॉन से बढ़ा कर पचहत्तर माइक्रॉन कर दी गई है। ये नियम 30 सितंबर से दो चरणों में लागू किए जाएंगे। चालीस माइक्रोमीटर या उससे कम मोटाई के प्लास्टिक को एकल उपयोग प्लास्टिक कहते हैं। यानी इन्हें एक बार उपयोग करके फेंक दिया जाता है। मसलन, सब्जी के पैकेट, चाय के प्लास्टिक कप, चाट-गोलगप्पे वाली प्लास्टिक प्लेट, पानी की बोतल, स्ट्रॉ आदि एकल उपयोग प्लास्टिक हैं।

पर्यावरण मंत्रालय की चिंता वाजिब है कि एकल उपयोग प्लास्टिक की वजह से पर्यावरण प्रदूषण पूरे विश्व के सामने चुनौती बन गया है। जहां प्लास्टिक हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में बहुत उपयोगी साबित हो रहा है वहीं यह हमारे स्वास्थ्य और पर्यावरण को बड़ी तेजी से नुकसान पहुंचा रहा है। प्लास्टिक प्रदूषण की समस्या दिनोंदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। भारत में प्लास्टिक कचरे के निस्तारण की व्यवस्था भी नहीं है। स्थिति यह है कि भारत में सड़क से लेकर नाली, सीवर और घरों के आसपास प्लास्टिक कचरा हर जगह नजर आता है। एक अनुमान के मुताबिक, भारत में हर साल छप्पन लाख टन प्लास्टिक कचरा पैदा होता है। साठ फीसद प्लास्टिक कचरे को दुनिया के महासागरों में फेंक दिया जाता है। एनवायरमेंट साइंस एंड टेक्नोलॉजी के अनुसार, दुनिया की दस नदियां, जो महासागरों में नब्बे फीसद प्लास्टिक ले जाती हैं, उनमें भारत की तीन प्रमुख नदियां सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने जनवरी 2015 की आकलन रिपोर्ट में कहा था कि भारतीय शहर हर दिन पंद्रह हजार टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न करते हैं।

प्लास्टिक किसी अन्य तत्व या जैविक चीजों की तरह पर्यावरण में घुलता नहीं, बल्कि सैकड़ों साल तक वैसे ही बना रहता है। साथ ही प्लास्टिक जिस जगह पर पड़ा रहता है उस जगह को अपने रसायनों से जहरीला भी बनाता जाता है। जिस मिट्टी में यह प्लास्टिक जाता है, उसे बंजर बना देता है। पानी में जाता है, तो पानी को न केवल जहरीला बनाता, बल्कि जलजीवों के लिए मौत का कारण बन जाता है। बीते पचास वर्षों में हमने जितना उपयोग प्लास्टिक का बढ़ाया है, किसी अन्य चीज का इतनी तेजी से नहीं बढ़ाया। 1960 में दुनिया में पचास लाख टन प्लास्टिक बनाया जा रहा था, आज यह बढ़ कर तीन सौ करोड़ टन के पार हो चुका है। यानी हर व्यक्ति के लिए करीब आधा किलो प्लास्टिक हर वर्ष

बन रहा है। हर साल तकरीबन 10.4 करोड़ टन प्लास्टिक कचरा समुद्र में मिल जाता है। 2050 तक समुद्र में मछली से ज्यादा प्लास्टिक के टुकड़े होने का अनुमान है। प्लास्टिक के मलबे से समुद्री जीव बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। कछुओं की दम घुटने से मौत हो रही है और वेल इसके जहर का शिकार हो रही हैं।

प्लास्टिक ने भारत में साठ के दशक में प्रवेश किया था। इसको लेकर आज एक अजीबोगरीब विवाद खड़ा हो गया है। पर्यावरणविदों का कहना है कि यह पारिस्थितिकी तंत्र के लिए खतरनाक है, लेकिन इसके पैरोकारों का दावा है कि यह पर्यावरण के अनुकूल है, क्योंकि यह लकड़ी और कागज का सबसे अच्छा विकल्प है। दरअसल, प्लास्टिक अपने उत्पादन से लेकर उपयोग तक सभी चरणों में पर्यावरण और पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के लिए खतरनाक है। इसके अलावा यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि इसका उत्पादन ज्यादातर लघु क्षेत्र के उद्योगों में किया जाता है जहां गुणवत्ता मानदंडों का पालन नहीं किया जाता। वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित किया गया है कि प्लास्टिक के सामान के उपयोग से नब्बे प्रतिशत कैंसर की संभावना होती है। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ का लक्ष्य 2030 तक स्ट्रॉ और पॉलिथीन बैग जैसी सिर्फ एक बार प्रयोग की जाने वाली प्लास्टिक की वस्तुओं का इस्तेमाल बंद करना है। प्लास्टिक कचरे में सबसे ज्यादा मात्रा एकल उपयोग प्लास्टिक की ही होती है।

अध्ययनों से पता चला है कि बोतलबंद पानी में भी प्लास्टिक के सूक्ष्म कण मौजूद हैं। कनाडाई वैज्ञानिकों द्वारा माइक्रोप्लास्टिक कणों पर किए गए विश्लेषण में चौंकाने वाले नतीजे मिले हैं। विश्लेषण में पता चला है कि एक वयस्क व्यक्ति प्रतिवर्ष लगभग बावन हजार माइक्रोप्लास्टिक कण केवल पानी और भोजन के साथ निगल रहा है। इसमें अगर वायु प्रदूषण को भी मिला दें तो हर साल करीब एक लाख इक्कीस हजार माइक्रोप्लास्टिक कण भोजन-पानी और सांस के जरिए एक वयस्क व्यक्ति के शरीर में जा रहे हैं। हर साल उत्पादित होने वाले कुल प्लास्टिक में से महज बीस फीसद पुनर्चक्रित हो पाता है। उनतालीस फीसद जमीन के अंदर दबा कर नष्ट किया जाता है और पंद्रह फीसद जला दिया जाता है। पूरी दुनिया में हर मिनट पेयजल की दस लाख प्लास्टिक बोतलें खरीदी जाती हैं। बोतलबंद पानी का पारिस्थितिकी तंत्र पर चौदह सौ गुना और जल स्रोतों पर पैंतीस सौ गुना अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है। बोतलबंद पानी को बनाने की प्रक्रिया में प्रतिवर्ष करीब 1.43 प्रजातियां धरती से खत्म हो रही हैं और जैव विविधता को नुकसान पहुंच रहा है। एक लीटर बोतलबंद पानी के लिए 1.6 लीटर पानी लगता है। इसमें भरा जाने वाला अधिकांश जल संसाधित भू-जल होता है, जिससे जलवाही स्तर घट रहा है।

भारत में बोतलबंद पानी के कारोबार को लेकर एक सर्वे रिपोर्ट बताती है कि यह सालाना लगभग इक्कीस प्रतिशत के हिसाब से बढ़ रहा है। 2019 के आंकड़े गवाह हैं कि एक सौ साठ अरब रुपए का यह कारोबार 2023 तक बढ़ कर चार सौ साठ अरब तक पहुंचने वाला है। इसका प्रत्यक्ष संबंध पर्यावरण से जुड़ा है। दुनिया भर में प्रचलित बोतलबंद पानी प्लास्टिक कचरे में बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण है। जहां देश के संपन्न लोग बोतलबंद पानी पर अवलंबित होते जा रहे हैं, वहीं निर्धन जनता बूंद-बूंद पानी को तरस रही है।

प्लास्टिक के जलने से उत्सर्जित होने वाली कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 2030 तक तीन गुना हो जाएगी, जिससे हृदय रोग के मामले में तेजी से वृद्धि होने की आशंका है। बीते साल इटली यूरोप का ऐसा पहला देश बन गया, जहां ऐसे प्लास्टिक पर पूरी तरह पाबंदी लगा दी गई, जो कुदरती तौर पर अपने आप पूरी तरह से नष्ट नहीं होता। चीन, दक्षिण कोरिया, केन्या, उगांडा, ताइवान और बांग्लादेश समेत कई देशों में बहुत पतले प्लास्टिक बैग के इस्तेमाल पर प्रतिबंध है। देखा गया कि प्लास्टिक के बैग नालियों को जाम कर देते हैं और कई बार बाढ़ का सबब बनते हैं। चूंकि भारत में

कुल प्लास्टिक कचरे का सत्तर प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में होता है, इसलिए शहरी स्थानीय निकायों को पुन: उपयोग योग्य और गैर-पुन: उपयोग योग्य श्रेणियों में इकट्ठा करने और विभाजित करने के लिए विशाल श्रम की आवश्यकता है। हमें समझना होगा कि पर्यावरण जैसी साझी विरासत की रक्षा करना हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है। प्लास्टिक को केवल कानून बना कर और जुर्माना लगा कर नहीं रोका जा सकता, बल्कि हमें इसके नुकसान को लेकर जन-जागृति लाने की आवश्यकता है। जब आमजन में यह समझ विकसित होगी कि प्लास्टिक जैसा पदार्थ बेजुबान पशुओं की मौत से लेकर भूमि की उर्वरता क्षमता को नष्ट करने वाला सबसे बड़ा कारक है, तो इसको लेकर लोग जरूर सचेत होंगे।

राष्ट्रीय सहारा

Date:27-08-21

सुस्ती पर 'सुप्रीम' नाराजगी

संपादकीय

केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) और प्रवर्तन निदेशालय (ईड़ी) जैसी जांच एजेंसियों की जांच की तलवार वर्षों तक किसी आरोपी के सर पर क्यों लटकी रहती है, उनका समय से निपटारा क्यों नहीं होता? खासकर सांसदों और विधायकों (पूर्व और मौजूदा) के खिलाफ दर्ज मामलों में जांच और सुनवाई की रफ्तार अत्यंत धीमी क्यों है? सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर चिंता जताते हुए पूछा है कि इन एजेंसियों ने आज तक इस बात की कोई वजह क्यों नहीं बताई? यदि कोई कमी है तो केंद्र सरकार को इन एजेंसियों को आवश्वक मानव संसाधन और बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना चाहिए। कोर्ट का कहना था कि अनेक मामले 15 से 20 साल से लटके हुए हैं और उनमें आरोप पत्र तक दायर नहीं हुए हैं। जांच एजेंसियां कुछ नहीं कर रही हैं, खासकर ईड़ी सिर्फ संपत्ति की कुर्की कर रहा है। इस मामलों को ऐसे ही लटका कर नहीं रखा जा सकता, या तो चार्जशीट दाखिल हो या मुकदमे बंद कर देने चाहिए। अदालत को बताया गया कि 122 सांसदों और विधायकों के खिलाफ धन शोधन के केस दर्ज हैं। इनमें से 78 मामले 2019 से ही लंबित हैं, जबकि सीबीआई ने भी 121 मामले दर्ज कर रखे हैं। कोर्ट का अवलोकन था कि सीबीआई जैसी जांच एजेंसी भी न्यायपालिका की तरह मामलों के बोझ से दबी हुई है। जांच एजेंसियां मानव संसाधन और आवश्यक बुनियादी ढांचे की कमी से जूझ रही हैं। एक निचली अदालत भी 1000 मामलों को संभालती है। विशेष अदालतों को विशेष कानूनों के तहत खास मामलों की सुनवाई करने को कहा गया था, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ है। न्याय मित्र का यह कहना भी गंभीर चिंता का विषय है कि जनप्रतिनिधियों के खिलाफ मामलों पर सीबीआई और ईड़ी की स्थिति रिपोर्ट परेशान करने वाली और चौंकाने वाली है। देखा जाए तो ऐसे मामलों का लंबित रहना सिर्फ मानव संसाधन और बुनियादी ढांचे की कमी के कारण ही नहीं होता। सत्तारुढ़ सरकारों को भी यह देरी बहुत भाती है क्योंकि ऐसे मामलों में लिप्त सांसदों और विधायकों में हर पार्टी के लोग शामिल होते हैं। मामलों के लंबित रहने से राजनीति के बहुत से सूत्र उलझाए या सुलझाए जाते हैं। इसी कारण बहुत से

राजनीतिज्ञों की सांसें ऊपर नीचे होती रहती हैं। इसी लिए तो विपक्षी राजनेता यदा-कदा सरकारों पर इन एजेंसियों के मनचाहे दुरुपयोग के आरोप लगाते रहते हैं। न्यायपालिका को इस स्थिति पर भी गौर करना चाहिए।

Date:27-08-21

संभावनाओं को आगे बढ़ाएं

भारत डोगरा

भारतीय समाज में इस समय समाज-सुधार की बहुत व्यापक संभावनाएं मौजूद हैं। इन्हें समुचित महत्त्व दिया जाए तो न केवल लोगों को, विशेषकर महिलाओं को बहुत राहत मिलेगी अपितु आर्थिक प्रगति की राह भी कई स्तरों पर बेहतर हो सकेगी। इसके बावजूद समाज-सुधार के अहम मुद्दों को प्रायः समुचित महत्त्व नहीं मिल सका है क्योंकि ज्यादा ध्यान आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर केंद्रित है। इसके अतिरिक्त समस्या यह है कि दैनिक जीवन की आपाधापी पर बहुत ध्यान केंद्रित रहने से व्यापक समाज-सुधार की संभावनाओं और इसके महत्त्व की ओर ध्यान कम जा रहा है। अतः जहां एक ओर हमें समाज-सुधार पर अधिक महत्त्व देना है, दूसरी ओर इसकी ऐसी राह प्रशस्त करनी है, जो अपेक्षाकृत अधिक सरलता व सहजता से अपनाई जा सके।

इस द्रष्टि से हमें समाज-सुधार का ऐसा क्षेत्र चिह्नित करना चाहिए, जिसमें व्यक्तिगत या परिवार के स्तर पर भी महत्वपूर्ण बदलाव लाया जाए। बहुत से लोग ऐसे हैं, जो कुछ बदलाव की जरूरत महसूस करते हैं पर अपनी सीमाओं के कारण किसी व्यापक बदलाव को अभी आरंभ नहीं कर सकते हैं। दूसरी ओर अपने व्यक्तिगत व अपने परिवार के स्तर पर बदलाव लाने में वे आज भी सक्षम हैं। अतः फिलहाल वे इस स्तर पर ही समाज-सुाार की शुरुआत करें। आखिर समाज भी तो बहुत से व्यक्तियों व परिवारों के मिलने से ही बनता है। आगे यह चिह्नित करना चाहिए कि वे कौन से बदलाव सबसे अहम हैं, जो बड़ी राहत भी देते हैं तथा साथ में जो व्यक्तिगत व पारिवारिक स्तर पर अपनाने संभव भी हैं।

पहला सुधार तो यह है कि हर तरह के नशे को परिवार से बाहर कर दिया जाए। सब सदस्य मिलकर ऐसा माहौल बनाएं कि जिसे पहले से नशे की आदत है; वह इस प्रेरणादायक माहौल में इसे छोड़ सके। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति शाम से शराब पीता है, तो इस समय उससे कम खर्च से कोई बहुत मजेदार व्यंजन परिवार के सभी सदस्य पकाएं व खाएं, गीत-संगीत करें या उनका रुझान इस तरह को हो तो वे मिलकर कोई भक्ति-श्रद्धा का गीत गाएं। यदि पिता ने नशा छोड़ा हो तो बच्चे पिता को गले लगाकर कहें कि थैंक्यू, आपने हमारा भविष्य बनाने के लिए यह किया। दूसरा सुधार यह हो सकता है कि परिवार का प्रमुख व्यक्ति यह वचन ले कि वह अपनी पत्नी से कभी कोई हिंसा नहीं करेगा व उसका अपमान नहीं करेगा। इसी तरह यह वचन माता-पिता ले सकते हैं कि वे बच्चों से मारपीट नहीं करेंगे व बेटे-बेटी में भेदभाव नहीं करेंगे। तीसरा सुधार यह हो सकता है कि जब अपने से कमजोर स्थिति के किसी व्यक्ति से कोई व्यवहार करना हो तो उसके प्रति न्याय व समता आधारित व्यवहार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त परिवार के सभी सदस्यों विशेषकर बच्चों को यह सीख मिल सकती है कि किसी भी पशु-पक्षी के प्रति क्रूरता का व्यवहार न किया जाए।

यथासंभव परिवार के सभी सदस्यों में सभी इंसानों की समानता, भेदभाव की समाप्ति, भाईचारे, ईमानदारी, मेहनत व सादगी की प्रतिष्ठा के संस्कार विकसित किए जा सकते हैं।

यह सब ऐसे प्रयास हैं जो व्यक्ति व परिवार के स्तर पर किए जा सकते हैं। इसके लिए किसी से अनुमति या सहायता प्राप्त करना जरूरी नहीं है। दूसरी ओर, इस तरह के प्रयासों के लिए अधिक-से-अधिक व्यक्ति व परिवार प्रेरित हों इसके लिए समाज में अनुकूल व उत्साहवर्धक माहौल बनाने के लिए समाज में व्यापक स्तर के प्रयासों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। लोकप्रिय नेताओं, अध्यापकों, समाज-सुधारकों व सामजिक कार्यकर्ताओं, समाजसेवी संगठनों आदि का इस प्रयास में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। धार्मिक नेताओं का भी योगदान हो सकता है पर इसके लिए उन्हें सभी मजहबी संकीर्णता व सांप्रदायिक सोच से मुक्त होकर व्यापक, सभी समुदायों की भलाई व भाईचारे की नीति अपनानी पड़ेगी। जहां समाज-सुधार के कुछ प्रयास परिवार व व्यक्ति के स्तर पर हो सकते हैं वहां इसकी सीमाएं भी हैं व इससे अधिक व्यापक स्तरों के भी प्रयासों की जरूरत है। कुछ प्रयास आस-पड़ोस के स्तर पर हो सकते हैं, गांव समुदाय के स्तर पर हो सकते हैं, जबकि कुछ उद्देश्यों के लिए समाज को और भी अधिक व्यापक स्तर पर आंदोलित करने व अधिक व्यापक सामाजिक अभियानों की आवश्यकता है। सांप्रदायिक सद्भावना की नींव अवश्य पारिवारिक स्तर पर पड़ सकती है, पर पूरे समाज में सद्भावना की स्थापना के लिए तो व्यापक प्रयासों की जरूरत है।

शहर में मोहल्ले व ग्रामीण क्षेत्र में गांव के स्तर पर यह आम स्वीकृति बनाई जा सकती है कि चाहे कैसी भी भड़काने वाली स्थिति उत्पन्न हो पर अपनी एकता व सद्भावना को बनाए रखेंगे व कोई कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर किसी भी संकटग्रस्त परिवार की रक्षा करेंगे। ऐसे प्रयासों की जरूरत तो सब जगह है पर ग्रामीण क्षेत्रों में चूंकि गांव की बेहतर व अधिक स्पष्ट पहचान हो सकती है अतः इस तरह का प्रयास गांव के स्तर पर अधिक असरदार व प्रभावी हो सकता है। समाज-सुधार के अन्य कई पक्ष हैं, जिनके लिए हमें गांव व मोहल्ले के आगे अधिक व्यापक स्तर पर प्रयास करने होंगे। दहेज समस्या को दूर करने के लिए ऐसे व्यापक प्रयास करने होंगे। चूंकि वैवाहिक संबंध दूर-दूर भी हो सकते हैं, अतः दहेज के विरुद्ध अधिक व्यापक स्तर पर माहौल बनान आवश्यक है। समाज में कुछ बुराईयां रुढ़िवादिता से जुड़ी हैं। दूसरे सिरे पर कुछ अन्य बुराइयां पश्चिमी आधुनिकता की विसंगतियों से भी जुड़ी हैं। हमें दोनों तरह की बुराइयों को दूर करना है। अतः मुद्दा परंपरा और आधुनिकता के टकराव का नहीं है, जैसा कि अति सरलीकृत व्याख्याओं में प्रायः कहा जाता है।

कुछ पक्ष परंपराओं के बहुत अच्छे हैं। कुछ पक्ष पश्चिमी आधुनिकता के बहुत अच्छे हैं। खतरा यह है कि कहीं परंपरा व आधुनिकता दोनों की बुराइयों को न अपना लिया जाए, जबकि जरूरत है कि दोनों की बुराइयों से बचा जाए। हमारे सामने चुनौती यह है कि हम सही चुनाव करें व सही संतुलन बनाएं। यह तभी हो सकेगा यदि हम सामाजिक पक्षों पर समुचित ध्यान देंगे और मात्र आर्थिक संवृद्धि व राजनीतिक उठापटक की संकीर्ण सोच से बाहर निकलेंगे। वैसे तो समाज-सुधार के यह सभी मुद्दे महत्वपूर्ण हैं पर शराब का विरोध सबसे अहम है और इस विरोध से समाज को तुरंत बड़ी राहत मिल सकती है।